International Journal of Hindi Research
ISSN: 2455-2232; Impact Factor: RJIF 5.22
Received: 12-04-2019; Accepted: 15-05-2019
www.hindijournal.com
Volume 5; Issue 4; July 2019; Page No. 69-70

समाज और शिक्षा का दार्शनिक चिन्तन

देवदास साकेत
शोधार्थी, दर्शनशास्त्र विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, मध्य प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

अध्यात्मिक पक्ष मानव जीवन को बौद्धिक चिन्तन की ओर ले जाता है। वेद, उपनिषद् में मानव में नैतिकता का भाव कैसा है ? जिसके सम्बन्ध में मानव को सदाचारी, आशावादी, चरित्रवान, दृढ़निश्चयी और निष्ठावान होने के कारण मानव बौद्धिक रूप से बलवान होते हैं। मानव का बौद्धिक स्वस्थ्य के लिए मन, बुद्धि और क्रिया की जाग्रत अवस्था होना आवश्यक है। मन ही दुर्गुण विकारों को आने से रोकता है। बुद्धि मानव प्रगति को ज्ञानमार्ग की ओर प्रेरित करती है। क्रिया का अर्थ शरीर से है इन ब्रह्म जगत् के कार्यों को निर्मित करने में शरीर उत्तरदायी है। इन तीनों तत्त्वों के स्वस्थ्य रहने से मानव में नैतिकता का भाव जाग्रत होता है जिस व्यक्ति की आत्मा और मन स्वस्थ्य है वह सभी विकारों से मुक्त और सुखी है। मानवीय मूल्यों के क्षरण हो रहे इस संसार में जहाँ व्यक्ति भटकता जा रहा है। उसे सही मार्ग प्राप्त करना चाहिए? अवगुणों को छोड़कर सद्गुणों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए?

मसजिद में ही जो अल्लाह खड़ा, तो और स्थान क्या खाली पड़ा?।
चारों वक्त नमाजों के, तो क्या और वक्त हैं चोरों के?।।
एका जनार्दनका बंदा, जमीन आसमान भरा खुदा।।[1]

सामाजिक व्यवस्था ने ईश्वर को अलग–अलग नामों से पुकारती है क्योंकि अल्लाह (ईश्वर) किसी एक जगह पर बधा हुआ नहीं है। वह तो सर्वव्यापी है। यह ईश्वर किसी एक व्यक्ति का नहीं हैं, वह तो सभी प्राणी का रखवाला है। प्रत्येक प्राणी की आत्मा में निवास करता हैं। उसके लिए अखण्ड स्मरण की आवश्यकता होती है क्योंकि वह निरंकारी है। उसका कोई आकार नहीं है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति की अपनी जिज्ञासा है। हम अधिक आर्शिवाद प्राप्त करने के लिए किसी का गला घोट देने से ईश्वर का असीम प्रेम नहीं पाया जा सकता है। सामाजिक व्यवस्था अपने और पराये के देवतावाद में खोई हुई है, जिससे शैक्षिक व्यवस्था चरमरा रही है। आधुनिकता की दौड़ ने प्राचीन गुरूकुल शिक्षा व्यवस्था को छोड़ दिया हैं, जिसके कारण आज नैतिक मूल्यों का हास्य होता जा रहा है। आधुनिक शिक्षा व्यवस्था ने प्रगति तो किया है किन्तु अधूरी प्रगति ने व्यक्ति को संस्कार से वंचित कर दिया है।

चन्द्र टरै सूरज टरै, टरै जगत व्यवहार।
पै दृढ़व्रत हरिश्चचन्द्रको, टरै न सत्य विचार।।[2]

हरिश्चन्द्र जैसे सत्यव्रत धर्म पालक जो अपने पुत्र को लेकर पत्नी मरघट में आई। वहाँ पर राजा हरिश्चन्द्र आये। बोलते हैं कि बिना कर दिये यह लाश नहीं जलाने देगें। राजा की पत्नी रोने बिलखने लगी। एक साड़ी ही मेरे पास है जो मैं पहने हुई हूँ आप इस साड़ी का कुछ भाग ले लीजिए। इस प्रकार की विचारधारा मानव को सत्य मार्ग से विचलित नहीं करती है। वर्तमान समय में ऐसे धर्म संरक्षक नहीं हैं। यहाँ तक की मूल्यांकन और नियुक्ति तक धर्म सम्मत नहीं होती है। ऐसे मूल्यों को क्या कहा जा सकता है? यह वैचारिक संघर्ष का युग है, जिसमें मानवीय मूल्यों की सम्भावनाऐं खत्म होती जा रही है।

प्रविधि

समाज और शिक्षा का दार्शनिक चिन्तन इस शोध पत्र के निर्माण हेतु द्वितीय सामाग्री संकलन के प्रयोग के द्वारा किया गया है। तथ्यों से सम्बन्धित स्त्रोंतों को एकत्रित करने के लिए मूल ग्रन्थों का अध्ययन किया गया है। इसके साथ–साथ धार्मिक ग्रन्थों का भी अध्ययन किया गया है।

उद्देश्य

- समाज में शिक्षा के दार्शनिक आधारों का अध्ययन करना।
- मानवीय मूल्यों का अध्ययन करना।
- समाज में मानवीय मूल्यों का अध्ययन करना।
- दर्शन में मानवीय मूल्यों का अध्ययन करना।

इस पृथ्वी में जब–जब अनाचार, दुराचार, पाप, अपकृत्य आदि से धर्म की हानि होगी अधर्म बढ़ेगा। तभी मैं स्वयं के रूप की रचना करता हूँ। अतः मैं साकार रूपों में मानव कल्याण के लिए अवतरित होता हूँ।[3] मानव की नैतिकता धर्म है। नैतिकता मानव के लिए एक गम्भीर पक्ष है, जिसको इसी नैतिकता के बल पर मानव सत्य और असत्य के भेद का निर्णय करता है। नैतिकता के सम्बन्ध में आचार मीमांसा में धर्म को ही श्रेष्ठ माना गया है। इसी धर्म के बल पर संसार चल रहा है। आचार मीमांसा के सम्बन्ध में दार्शनिक प्रो. रमेशचन्द्र सिन्हा के शब्दों में "दर्शन एक सांस्कृतिक क्रिया है। सीमांत नैतिकता के लिए भी सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य प्रासंगिक है।"[4]

महात्मा विदुर ने शांति पर्व में पाण्डवों से विचार विमर्श किया कि धर्म, अर्थ, काम में सबसे अधिक प्रधानता किसकी है। श्रेष्ठ कौन है मध्यम कौन है और लघु किसकों कहा जाये। इन तीनों तत्वों में सर्वश्रेष्ठ कौन है, जिसमें विजय कैसे प्राप्त की जा सकती है। इस सम्बन्ध में प्रत्येक व्यक्ति के अलग–अलग दृष्टिकोण पर चर्चा का विषय बना, जिसकी प्रधानता का वर्णन महात्मा विदुर करते हैं कि "अनेक शास्त्रों का अनुशीलन, तपस्या, त्याग, श्रद्धा, यज्ञ–क्रिया, भाव–शुद्धि, दया, सत्य और संयम, यही मुख्य है; यही धर्म और अर्थ के मूल हैं। धर्म सर्वश्रेष्ठ है, अर्थ मध्यम और काम लघु।"[5] अर्जुन ने मत प्रकट कर कहता है कि इन सबमें श्रेष्ठ अर्थ है। अर्थ के बिना कुछ भी संभव नहीं है क्योंकि विशिष्ठ लोग धनवान की उपासना करते हैं। इससे कर्म क्षेत्र की प्रत्येक उपयोगिता के लिए अर्थ सबसे महत्वपूर्ण माना गया है। इसलिए अर्थ और काम दो ही महत्वपूर्ण हैं। नकुल और सहदेव ने भी अर्थ को ही महत्वपूर्ण बताया। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति घूमते फिरते सभी जगहों में धन की ही आवश्यकता होती है। इससे अर्थ भी अधिक महत्वपूर्ण है। इसके बाद भीमसेन ने अपना मत प्रकट किया। कामना के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है क्योंकि कामना से आसक्त होकर ऋषि मुनि भी तपस्या करते हैं। कमनाओं के बिना

न कोई धन कमाता है और न धार्मिक क्रियाऐं करता है, जिस प्रकार से से दूध से दही, दही की मूल क्रिया का सार मक्खन है। उसी प्रकार धर्म, अर्थ का सार भी काम है। इनमें से जो केवल एक तत्वों का सेवन करता है। वह निकृष्ठ कहा जाता है। इनमें किन्हीं दो के सेवन को ही लक्ष्य मानने वाले मध्यम है। श्रेष्ठ वहीं है जो तीनों का सेवन करते हैं। ऐसे श्रेष्ठ पुरूषों को ही उत्तम कहा जाता है। इन सबके तथ्यों को सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर कहते है कि श्रेष्ठ मनुष्य वहीं है जो किसी भी कार्य से अनासक्त रहकर करे, जिससे उसे मुक्ति प्राप्त हो सके।[6] यदि वर्तमान के तथ्यों को खोजने का प्रयास किया जाता है तब अर्थ मूलक बाते अर्जुन की यर्थाथ लगती है। इस समय मानवीय मूल्यों को छोड़कर व्यक्ति स्वार्थी पैसों के लालच में न जाने क्या–क्या कर रहा है। उन पैसों से काम की पूर्ति के उद्देश्यों से भटककर (व्यभिचार नामक काम में धन को लुटा रहा है।) यह यथार्थ को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि महाभारत काल की बाते आज कलयुग में यथार्थ साबित हो रही है। धर्म के मूल तत्वों से भटकता जा रहा है जबकि इन तीन तत्वों में से मेरा मत प्रतिपादित होता है कि सर्वश्रेष्ठ धर्म है। व्यक्ति के विचारों में क्या आधुनिकता का प्रश्न अर्थ, चोरी, लालच, दूसरे के हिस्से आदि के लिए बनाया गया है जिनके विचारों की श्रेणी में मानवीय आधार भी प्रतिपादित होता है। जहाँ तक समाज के मूल्य भी धर्म पर निर्भर हैं। धर्म का मतलब यथार्थ सत्य से हैं।

मनुष्य में देश भूत की दृष्टि अहंकार मद, मोह आदि से अलग स्वार्थरहित सबका प्रेमी होता है। वहीं हेतुरहित दयालु है तथा ममता से विरक्त होकर अहंकार अपने मन से त्याग देता है। वही इस संसार में सुखी और मुक्ति का दाता कहा गया है। जो सुख–दुःख में सब की बातों को सुने उससे बड़ा बौद्धिक बुद्धिमान हृदय की पवित्रता को रखने वाला नहीं हो सकता है। मन–इन्द्रियों के वश में रखने वाले ही इस संसार में सुख को प्राप्त करते हैं। जहाँ धर्म की प्रधानता और भय से मुक्ति का मार्ग दिखाया गया है। इससे बड़ा सुख क्या हो सकता है। जहाँ मानवीय दुःखों को प्रत्येक व्यक्ति बाटने की कोशिस करता है। इससे बड़ा सुख क्या हो सकता है। वह मन बुद्धि का गुणी मेरा भक्त है जिसकी कल्पना का करूण रस भी मानवीयता का प्राण है।[7]

निष्कर्ष

दार्शनिक चिन्तन के आधार पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण को तार्किक प्रणाली से मापने का प्रयास किया गया है। आज वैज्ञानिक तथ्यों की प्रमाणिकता प्रयोग के द्वारा सिद्ध की जा रही है। उसका परिणाम धर्म के आधार पर निकलना ही नैतिक मूल्यों की सार्थकता है। जिस मानवीय मूल्यों धर्म सम्मत होने चाहिए। जहाँ विचारधाराओं की विसंगतियों का मूल्य परक परिणाम दिखाई दे। वही सस्वत सत्य है, जिस प्रकार से महाभारत में धर्म, अर्थ, काम की चर्चा से पता चलता है। धर्म सर्वश्रेष्ठ है। इन्हीं तथ्यों को दृष्टिगत रखते हुए निष्कर्षतः वैज्ञानिक और तकनीक प्रणाली भी धर्म सम्मत हो, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को निर्णय सत्य और यथार्थ पर हो धर्म सम्मत हो। न कि अर्थ सम्मत हो। जिस प्रकार से कहा गया है कि धनवान लोगों की पूजा प्रत्येक व्यक्ति करता है। अर्थ (पैसो) से कोई भी निर्णय गलत और अतार्किक नहीं करना चाहिए। इतना वैज्ञानिक परीक्षण और तकनीक को ध्यान में रखना चाहिए। पाप को पैसे से छुपाना नहीं चाहिए। उसे उजागर करना चाहिए। यही धर्म सम्मत मानवीय मूल्य है।

सन्दर्भ

1. श्रीएकनाथ –चरित्र, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 96
2. बड़ों के जीवन से शिक्षा, गीताप्रेस गोरखपुर, पृष्ठ 7
3. श्रीमरगवमीता, गीताप्रेस गोरखपुर, अ. 4, श्लोक 7/पृष्ठ 65
4. डॉ. श्यामल किशोर, सीमान्त नैतिकता के आयाम , इम्प्रेशन पब्लिकेशन पटना, 2014, पृष्ठ 7
5. डॉ. देवराज, भारतीय संस्कृति, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ, 2010, पृष्ठ 45–46
6. महाभारत के शान्तिपर्व से उद्घृत, गीताप्रेस गोरखपुर, श्लोक 5 से 46 तक का अध्ययन, 167
7. श्रीमरगवमीता, गीताप्रेस गोरखपुर, अ. 12, श्लोक 13–14, पृष्ठ 162